ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(1): 892-895
www.allresearchjournal.com
Received: 12-11-2016
Accepted: 22-12-2016

नीतु गौरव
शिक्षिका, एस.एम. उच्च विद्यालय, बसैठ, मधुबनी, बिहार, भारत

Corresponding Author:
नीतु गौरव
शिक्षिका, एस.एम. उच्च विद्यालय, बसैठ, मधुबनी, बिहार, भारत

राजनीतिक और प्रशासनिक भ्रष्टाचार के स्वरूप

नीतु गौरव

सारांशः
वर्तमान समय में राजनीति का अपराधीकरण हो गया है तथा अपराध का राजनीतिकरण हो गया है। अब सवाल है कि जब राजनीति में ही अपराध का समावेश हो गया हो तो देश की स्थिति क्या होगी। तमाम बड़े–बड़े अपराधी जातीय राजनीति के माध्यम से सत्ता में जा बैठे हैं, साथ ही ये लोग अपनी सुरक्षा के लिए ऑफिसरों को पाल कर रखते हैं। इस कारण शासन–प्रशासन में भी भ्रष्टाचार का समावेश हो गया है। अतएव कहा जा सकता है कि दोनों में निहित भ्रष्टाचार के निवारण से ही हम परिष्कृत राज और समाज की कल्पना कर सकते हैं।

प्रस्तावनाः
भारत में वयस्क मताधिकार आधारित चुनाव, जन प्रतिनिधि सदन एवं उत्तरदायी सरकार के रूप में लोकतांत्रिक व्यवस्था कार्यशील है। हमारे देश में चुनाव और सदन के उद्देश्यों एवं कार्यप्रणाली के महत्त्व को ध्यान में रखते हुए आचार संहिताओं का निर्धारण किया गया है। राजनीतिक लोकतंत्र सहमति और सहभागिता पर आधारित एक सहकारी व्यवस्था होती है, जिसका वर्तमान स्वास्थ्य और भविष्य उसके निष्पक्ष, स्वतंत्र, निर्विकार चुनावतंत्र के आचरण पर निर्भर करता है। लोकतंत्र में शासन–व्यवस्था जनता द्वारा चुने गए प्रतिनिधियों द्वारा सुसंगठित, योग्य और ईमानदार नौकरशाही तंत्र के माध्यम से चलाई जाती है। इसलिए यह जरूरी हो जाता है कि इन जनप्रतिनिधियों का चरित्र साफ सुथरा और इनकी मंशा जनकल्याणकारी हो।
चुनावों में आचार संहिता के तहत मत प्राप्त करने के लिए जाति, धर्म, भाषा के आधार पर विभिन्न समुदायों के बीच भावनाओं को भड़काने, अन्य राजनीतिक दलों के सदस्यों की व्यक्तिगत आलोचना करने एवं शासकीय मशीनरी के प्रयोग की मनाही है। इसी प्रकार सदनों की कार्यचारियों में विधायकों के लिए शिष्टाचार के नियमों को पालना, सूचनाओं की गोपनीयता, सरकारी कर्मचारियों अथवा मंत्रियों पर अनुचित प्रभाव न डालना अपने रिश्तेदारों व अभिरूचि वाले व्यक्तियों को लाभ दिलाने की सिफारिश के पत्र आदि न लिखना जैसी बातों का उल्लेख आचार–संहिता में किया गया है। आचार–संहिता में निर्धारित प्रावधानों को पालना सुनिश्चित करवाना शासन का दायित्व है।
इसके लिए लोक–प्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 की धारा 123 में रिश्वतखोरी, अनुचित दबाव, धर्म, नस्ल, जाति एवं भाषा के आधार पर मतदान की अपील को भ्रष्ट आचरण माना गया है। कानूनी एवं तमाम सैद्धांतिक प्रावधानों के बावजूद व्यावहारिक धरातल पर चुनावों एवं सदनों में आचार संहिताओं को पालना सुनिश्चित नहीं हो पा रहा है, जिसकी वजह से राजनीतिक व्यवस्थाएँ चरमराने लगी हैं।
भारतीय राजनीति में चुनाव से सदन तक के सफर रूपी आइने में ''आचार संहिता का अवलोकन करने पर उसका स्वरूप मानवीय के स्थान पर दानवी नजर आने लगा है।'' व्यावहारिक धरातल पर चुनाव एवं प्रतिनिधि सदनों की मान मर्यादा की रक्षा हेतु निर्धारित आचार संहिताओं के स्थान पर स्वार्थी राजनीतिक तत्त्वों द्वारा इनके समकक्ष भ्रष्टाचार संहिताओं की रचना कर ली गई है, जिसमें अपराध–अत्याचार और दुराचार भ्रष्टाचार मुख्य भूमिकाओं में नजर आ रहे हैं।
चुनावों के समय प्रतिनिधियों एवं उम्मीदवारों द्वारा हमें वोट के लिए रोट–नोट, नशा–नेग, जात–पात और न्याय के लालच एवं भ्रमजाल के सहारे मतदाताओं को अपने पक्ष में बखूबी तरीकों से प्रभावित किया जाता है। भारतीय राजनीति में चुनावी आचार–संहिता का उल्लंघन करते हुए सदनों में पहुँचे जन–प्रतिनिधियों द्वारा जोश में अपनी पाशविक अपराधी वृत्तियों का प्रदर्शन, असम्य भाषा, व्यक्तिगत दोषारोपण, धक्का–मुक्की एवं तोड़–फोड़ के रूप में सदनों की आचार संहिताओं की धज्जियाँ उड़ाई जा रही है।
नवम्बर 2001 में पीठासीन अधिकारियों, पक्ष–विपक्ष के नेताओं, मुख्यमंत्रियों, सचेतकों की मीटिंग में प्रश्नोत्तरकाल बाधित नहीं होने, पीठासीन अधिकारियों के निर्देशों का पालन और सदनों में व्यवस्था बनाए रखते हुए सुचारू रूप से चलाने का फैसला हुआ था और संसद के दोनों सदनों ने इसे मंजूर

भी किया था। इसके बावजूद भी संसद और विधानसभा के सदनों के सत्र हंगामों और शोरगुल से भरपूर नजर आते हैं। प्रश्नकाल शुरू होते ही बाधित हो जाते हैं। अध्यक्ष के आसन के करीब जमा होकर शोर मचाना, धरना देना नई परम्परा बनती जा रही है। सदनों की इस प्रकार की अनुत्पादक गतिविधियों में सदनों का समय और धन बर्बाद होता है। बोफोर्स के मामले में कई दिनों तक संसद की कार्यवाही नहीं चल पाई तथा सुखराम काण्ड में तेरह दिन तक भी सदन का यही हाल रहा।

एक मार्के की बात यह है कि पूर्व में सदन के सदस्यों द्वारा अपनी जानकारी, अध्ययन या खोज के आधार पर मसले उठाए जाते थे और फिर वे अखबारों की सुर्खियाँ बनते थे, लेकिन आजकल उसका उल्टा हो रहा है कि सदस्यों द्वारा अखबारों की सुर्खियों के आधार पर एवं पैसे लेकर मसले उठाए जाते हैं। इस प्रकार के सदस्यों के व्यवहार का सदनों की मर्यादा पर असर पड़ता है। आजकल आपराधिक मामलों में जाँच के चलते भी जन प्रतिनिधिगण मंत्री बने रहते हैं।

इस प्रकार राजनीति के पिछड़ेपन और अपराधीकरण की स्थिति में जनता का जनता के लिए और जनता द्वारा शासन का लोकतांत्रिक स्वरूप देश में एक 'यूटोपिया' बनकर रह गया हैं। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने संसद को प्रजातंत्र के मंदिर की संज्ञा दी थी। इसकी सार्थकता के लिए संसदीय प्रणाली के पक्ष और विपक्ष रूपी गाड़ी के दोनों पहियों का समान गति से घूमना अनिवार्य है। जहाँ एक की जिम्मेदारी सरकार चलाना और दूसरे की उस पर नजर एवं अंकुश रखने की होनी चाहिए।

इस समय देश दुर्भाग्यपूर्ण दौर से गुजर रहा है। देश की प्रगति और विकास के नाम पर वोट मांगने का साहस न कर पाने वाले राजनीति दल अब क्षेत्र, जाति, वर्ग, मंदिर–मस्जिद और सम्प्रदाय के नाम पर जनता की भावनाओं के साथ खिलवाड़ की राजनीति करने लगे हैं, जिनकी वजह से ''हम पवन थे, लेकिन आंधियों में बँट गए। हम पृष्ठ थे, लेकिन हाशियों में बँट गये। जन्म से तो हम सिर्फ इंसान थे, लेकिन आज हम स्वयं ही जातियों में बँट गये।'' [1]

राजनीति और अपराध के संबंध में 1978 में न्यायधीश कृष्ण अय्यर ने एक प्रकरण में कहा था कि ''निष्पक्ष चुनाव का बाहुवलियों तथा भ्रष्ट तरीके अपनाने वालों ने अपहरण कर लिया हैं।'' [2] उच्चतम न्यायलय ने कॉमन कॉज केस में 1996 में कहा था कि राजनीतिक पार्टियाँ चुनावों में 1000 करोड़ रूपए से ज्यादा खर्च करती हैं, लेकिन आय के स्त्रोत नहीं बताती। राष्ट्रीय अपराध ब्यूरो (गृह मंत्रालय, भारत सरकार) द्वारा जारी रिपोर्ट के अनुसार 2005 के दौरान भारत में आपराधिक हिंसा की घटनाओं का प्रतिशत उत्तरप्रदेश में 12.5, बिहार में 11.9 महाराष्ट्र में 9.2 मध्यप्रदेश में 7.3, कर्नाटक में 6.0, राजस्थान में 5.0 और असम में 4.4 फीसदी रहा। नवम्बर 2003 में स्टाम्प पेपर घोटाले में यह बात सामने आई कि मुख्य आरोपी अब्दुल करीम तेलगी ने अपराधियों, क्षेत्रीय राजनीतिक दल और मुम्बई के पूर्व पुलिस आयुक्त की मदद से अरबों रुपये के फर्जी स्टाम्प, पेपर बेचे। जनवरी 2004 में इंजीनियर सत्येन्द्र दुबे की हत्या करवा दी गई। इसी प्रकार नवम्बर 2006 में झारखण्ड मुक्ति मोर्चा के अध्यक्ष शिबु सोरेन को अपहरण और हत्या के मामले में दोषी ठहराया गया। 1993 में तत्कालीन गृह सचिव एन.एन. बोहरा की अध्यक्षता में गठित समिति ने तो अपनी रिपोर्ट में धन, अपराध जगत और राजसत्ता के तिकोने को विस्तार से उजागर किया, जिसकी खास बातें इस प्रकार हैं :–

1. समिति ने अपने अध्ययन में पाया कि राजनीतिज्ञों, प्रशासनिक अधिकारियों और अपराधियों ने देश के विभिन्न हिस्सों में अपना गठजोड़ बना रखा है। पिछले कई सालों से राजनीतिक दलों और प्रशासन के संरक्षण से अपराधी तत्त्व स्थानीय निकायों, राज्य विधानसभाओं और संसद के लिए चुने जा रहे हैं।
2. राजनेताओं, अपराधियों और प्रकाशकों का यह गठजोड़ एक उन्नत दुष्चक्र है। समाज के अपराधी तत्त्व और धन सम्पन्न मिलकर एक हो जाते हैं और अपने पसंद के व्यक्तियों को अपने क्षेत्र से चुनकर भेजने के लिए अपनी पूरी ताकत झोंक देते हैं। चुनाव भेजने के बाद ये तत्व इस राजनेता के माध्यम से अपने हित साधते हैं। यह राजनेता भी अपने हितों के अनुसार प्रशासनिक पदाधिकारियों को प्रोन्नति और अन्य सुविधाएँ दिलाता है।

लोकतंत्र का आशय चयन से है, लेकिन मतदाता के आगे उस समय कोई विकल्प नहीं होता, जब उसे अपराधियों जैसे लोगों के बीच से ही किसी एक का चयन करना हो। इस प्रकार कानून तोड़ने वालों को शक्तिशाली बनाने से ही भारत के लोकतंत्र में बुराइयाँ पनपी है। राजनीति सचमुच तमाशा बनाती जा रही हैं जिसमें कुछ लोग जिनके पेट भरे हुए हैं इस तमाशे का मजा ले रहे हैं, वहीं दूसरी तरफ आम जनता अपनी रोजमर्रा की जरूरतों को भी पूरी नहीं कर पा रही हैं

हाल के दशकों में शायद ही कोई ऐसी विधायिका केन्द्र या राज्यों में आई हो जिसकी प्रतिष्ठित सीटों पर अपराधी विराजमान न हो। एक सर्वे के अनुसार इस समय करीब 700 विधायक और 40 सांसद आपराधिक पृष्ठभूमि के हैं। पूर्व मुख्य निर्वाचन आयुक्त जी.बी.जी. कृष्णमूर्ति के अनुसार 1996 के चुनावों में 1500 उम्मीदवार ऐसे थे जिनके खिलाफ हत्या, अपहरण, डकैती और बलात्कार के मामले दर्ज थे। [3] ऐसे तत्त्व विधायकाओं में सिर्फ आपराधिक पृष्ठभूमि ही नहीं लाते अपनी नई स्थिति और प्रभाव का उपयोग अपने कार्यकलाप बढ़ाने के लिए करते हैं। जिस दल में सत्ता के अधिक अवसर होते हैं, उसमें अपराधियों की संख्या भी अधिक होती है, क्योंकि अपराधी तत्त्वों की नजर सत्ता पर ही टिकी रहती है। इससे ऐसा लगता है कि राजनीति का अपराधीकरण राजनीतिक दलों का भी निहित स्वार्थ बन गया है, जिसकी वजह से पिछले तीन दशकों के राजनीतिक अपराधीकरण के खिलाफ उठी विभिन्न आवाजों को राजनीतिक दलों और सदनों में अनसुना कर दिया गया।

उदारीकरण के बाद से तो भ्रष्टाचार का खेल राजनीतिक संस्थाओं में बढ़ता ही जा रहा है, जिसमें जनप्रतिनिधियों अथवा उनके निकटवर्ती लोगों ने विभिन्न घोटालों में 50 हजार करोड़ रूपए से अधिक की सम्पत्ति लूटी है। ऐसे लोगों के बारे में ही कहा जाता है कि ''जमीं बेच देंगे, जमां बेच देंगे। ये मुर्दों के सिर का कफन बेच देंगे। न्याय के प्रणेता अगर चुप रहे तो वतन बेच देंगे।'' सरकारी आँकड़ों के तौर पर 1991 के बाद से सी.बी.आई. द्वारा दर्ज मामलों में 109 राजनेता शामिल थे। इनमें से 32 सांसद 19 विधायक और 53 केन्द्र और राज्यों में मंत्री और पूर्व मंत्री शामिल थे।

हमारा संवैधानिक संस्थाओं में आपसी विश्वास और सहयोग की भावना कम होती जा रही है। निर्वाचन आयोग को संविधान द्वारा स्वायत्तता का दर्जा दिया हुआ है, लेकिन इस संस्था की स्वायत्तता हमारे राजनीतिक दलों तथा विधायिका के सदस्यों को चुभती रहती है। सांसदों और विधायकों का कार्य तो जनहित में सरकार चलाने में मददगार बनना और सरकार को गलत काम करने से रोकना होता है, लेकिन व्यवहार में पक्ष और विपक्ष दोनों प्रकार के प्रतिनिध अपना हित साधने में लगे हुए हैं। मंत्रियों का भोलापन, प्रधानमंत्री और मुख्यमंत्रियों की अनाशक्ति और प्रमुख विपक्ष की काहिली सबने मिलकर, लोकतंत्र को हास्यास्पद बना दिया है। इसीलिए कहा जाता है कि ''बगुलों का शासन हुआ, निर्वासित है हंस, सिंहासन पर आ गए, रूप बदलकर कंस।'' राजनीतिक व्यवस्था में पनप रहे अपराध और भ्रष्टाचार के कारण देशभक्ति की पर्याय राजनीति अब प्रभाव, धन और शक्ति का प्रतीक बनती जा रही है। इस भ्रष्टाचार रूपी बीमारी की वजह से राजनीतिक मूल्य नष्ट होते जा रहे हैं, संस्थाएँ टूटने लगी हैं,

राजनीतिक व्यवस्था दूषित हो रही है समाज में अराजकतावादी स्थितियाँ उत्पन्न हो रही हैं। राष्ट्र की सुरक्षा खतरे में दिखाई दे रही हैं, नौकरियाँ बिकने लगी हैं, ईमानदारी योग्यता और कठोर परिश्रम करने वालों को दर किनारा किया जा रहा है, सत्ता पर धन बल और भुजबल का प्रभुत्व स्थापित हुआ जा रहा है।

इससे ऐसा लगता है कि संविधान के आदर्श और उद्देश्य पूरे नहीं हो पाए हैं। त्याग एवं जनसेवा की भावना से प्रेरित होने की बजाय राजनीति एक लाभकारी पेशा, धनोपार्जन का माध्यम और सत्तामुख भोगने का साधन बन गई है, क्योंकि ''प्रतिनिधियों ने नोची जी भर जन सत्ता की हर डाली माँझी तो षड्यंत्र करें लहरे रक्षा करने वाली।'' ऐसी स्थिति में ''माली तो नीलाम चढ़ेंगे। कुटिया करके अपनी खाली। फूलों को ही करनी होगी, अब तो बागों की रखवाली।''

भारत में लोकतंत्र वैसा नहीं हो पाया जैसा उसे होना चाहिए, क्योंकि भ्रष्ट एवं अपराधी लोगों के राजनीति मतें आने से राजनीति, निर्वाचन–प्रणाली और लोकतंत्र तीनों ही दूषित हो गए, जिसकी वजह से ''कलम हुई वैशाखियाँ बुझदिल हुए कलाम, झुक झुक कुबड़े कर रहे, सत्ता तुझे सलाम।'' [4] भारत में राजनीतिक इच्छाशक्ति के अभाव, कानून की पंगुता एवं लाचारी की वजह से राजनीति में आचार संहिताओं की पालना नहीं हो पा रही है। भारतीय राजनीति में आचार संहिताओं की पालना सुनिश्चित करने के लिए कृष्णमूर्ति के शब्दों में ''राष्ट्र को यह सुनिश्चित करना होगा कि संसद अपराधियों की, अपराधियों द्वारा और अपराधियों के लिए नहीं रहे।'' [5] बोहरा समिति के सुझावों के अनुरूप अपराध अन्वेषण प्रक्रिया को मजबूत करना होगा, जनता को जागरूक बनाना होगा और जाति आधारित राजनीति को हतोत्साहित करना होगा। इसके साथ ही चुनावों में भ्रष्ट एवं अपराधी तत्त्वों के प्रवेश पर रोक लगानी होगी, कानूनों की सख्ती के साथ पालना करनी होगी और जनता को जागरूक एवं सक्रिय राजनीतिक सहभागिता का परिचय देकर ''आचार संहिता'' रूपी आदर्श मूल्यों की रक्षा हेतु अपनी भूमिका का निर्वहन करना होगा।

प्रशासनिक भ्रष्टाचार

प्रशासनिक भ्रष्टाचार का अभिप्राय ऐसे आचरण से है, जिसकी आशा लोक सेवकों से नहीं की जाती है। यदि लोक प्रशासन अपनी शक्ति, सत्ता एवं स्थिति का प्रयोग जन–सामान्य के लाभों की अपेक्षा अपने व्यक्तिगत लोगों के लिए करने लगे तो वही 'भ्रष्ट आचरण' माना जाएगा। अतः भ्रष्टाचार एक ऐसा व्यवहार है, जिसमें सरकारी कर्मचारी व्यक्तिगत आर्थिक लाभ उठाने के लिए सार्वजनिक कर्तव्यों से विचलित होकर नियमों का ऐसा उल्लंघन करता है, जिससे कुछ विशेष प्रकार के निजी लाभ प्राप्त हो सके।

वास्तविकता यह है कि राजनीतिक भ्रष्टाचार की छांव में प्रशासनिक भ्रष्टाचार भी फलता–फुलता रहा है। पहले लोकप्रशासन का क्षेत्र अत्यंत सीमित था, फलस्वरूप भ्रष्टाचार की गुंजाइश कम थी, परंतु वर्तमान समय में लोक प्रशासन के क्षेत्र का अत्यधिक विकास होने के कारण भ्रष्टाचार की मात्रा में भी असाधारण वृद्धि हुई है।

स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद देश में विप्लवकारी स्थिति की प्रधानता रही है। देश का विभाजन हुआ, सांप्रदायिक दंगे हुए, जनसंख्या का स्थानांतरण हुआ, कश्मीर का युद्ध तथा देशी रियासतों के एकीकरण की समस्या आयी। इन सबके फलस्वरूप 'कानून का शासन' खंडित हो गया तथा लोकसेवकों में भ्रष्टाचार के लिए नवीन मार्ग खुल गए। स्वाधीन भारत में कल्याणकारी एवं समाजवादी राज्य का आदर्श अपनाया गया, जिससे राज्य के कार्यों में असाधारण वृद्धि हुयी। खास तौर से आर्थिक क्षेत्र में राज्य के कार्यों में वृद्धि होने के नियम, नियंत्रण, लाईसेंस, परमीट का युग प्रारंभ हुआ और भ्रष्टाचार के नये आयाम प्रकट हुए। विभिन्न स्तरों पर राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने की होड़ ने इस व्याधि को कैंसर की भांति असहाय बना दिया। राज्य तथा केंद्रिय स्तर के मंत्री, संसद तथा विधायिका के सदस्यों का नवीन वर्ग भी भ्रष्ट लोक सेवकों के साथ मिल गया। राजनीतिज्ञों को एहसानमंद बनाने वाले लोकसेवक बदले में निडर होकर हर प्रकार का भ्रष्ट व्यवहार करने लगे। जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि ''राजनीतिक एवं प्रशासनिक भ्रष्टाचार एक ही सिक्का के दो पहलू हैं।'' [6]

आज स्थिति ऐसी बन गयी है कि जनता कर्मचारियों के भ्रष्ट आचरण से दुःखी होकर रिश्वत देने को अपना धर्म मानने लग गयी है। यदि अस्पताल में भर्ती होने के लिए और डॉक्टरों से ऑपरेशन करने के लिए भी रोगी को अथवा गरीब व्यक्तियों को रिश्वत का सहारा लेना पड़े तो यह कर्मचारी और राजव्यवस्था दोनों के लिए शर्म की बात है। इसी प्रकार काले धन के निर्माण का एक सबसे बड़ा कारण यह है कि विकास तथा निर्माण–संबंधी योजनाओं के लिए स्वीकृत धन राशि के एक अच्छे–खासे भाग का 'भ्रष्ट नेता, अधिकारी तथा ठेकेदारों द्वारा' नीचे में ही हड़प लिया जाना। रिपोर्ट में इन तथ्यों का हवाला देकर यह कहा गया कि ''मंत्रीगण और ऊंचे अफसर अपने निजी लाभ के लिए इस तरह घूस वसूल करते हैं, मानों वह उनका प्राइवेट टैक्स हो।'' [7]

बोफोर्स काण्ड ने हमारे सौदों से व्याप्त रिश्वत और भ्रष्टाचार की पोल ही खोल दी। स्वीडिया रेडियो ने आरोप लगाया कि बोफोर्स कंपनी और भारत के बीच लोगों की खरीद के अरबों डॉलर के समझौतों में भारतीय अधिकारियों को रिश्वत दिलायी गयी।

मार्च, 2001 में 'तहलका' के टेपो में जो कुछ भी देखा गया, वह आंखें खोलने के लिए काफी है। खोजी पत्रकारिता की अभूतपूर्व मिशन प्रस्तुत करते हुए तरूणतेजपाल के 'तहलका डॉट कॉम' ने प्रमुख राजनीतिज्ञों एवं सैन्य अधिकारियों के साथ वार्ता के ऐसे वीडियो टेप जारी किए, जिनमें इनलोगों को रक्षा सौदे संपन्न कराने के लिए कमीशन यानी घुस लेने को तैयार दिखाया गया।

ट्रान्सपैरेंसी इन्टरनेशनल की 2008 की रिपोर्ट के अनुसार भ्रष्टाचार में 180 देशों में भारत इस वर्ष 74वें स्थान पर रहा, जबकि बीते वर्ष 72वें स्थान पर था। भ्रष्ट राज्यों में जहाँ बिहार अब्बल है, वहीं जम्मू–कश्मीर दुसरे नंबर पर है, जबकि केरल सबसे कम भ्रष्ट राज्य है। अध्ययन में भारत की 11 सार्वजनिक सेवाएं शामिल की गई, जिसमें पूलिस को सर्वाधिक भ्रष्ट महकमें का दर्जा मिला।

इस प्रकार वर्तमान समय में राजनीतिक एवं प्रशासनिक भ्रष्टाचार की प्रवाह ऊपरी स्तर से लेकर निचले स्तर तक पहुंच चुकी है। अभी हाल 2014 में प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह के मिडिया सलाहकार संजय बारू की प्रकाशित पुस्तक 'द एक्सीडेंटल प्राइम मिनिस्टर' में यह रहस्योद्घाटन किया है कि कोई भी प्रमुख फाइल पहले कॉंग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी की स्वीकृति के पश्चात् ही प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिह के पास स्वीकृति एवं हस्ताक्षर हेतु पहुंचती है। पूर्व कोयला सचिव पी.सी.पारेख के शब्दों में कोयला घोटाले से संबंधित उनके विरूद्ध यह भी आरोप है कि जिस समय कोयला घोटाला हुआ, उस समय यह विभाग प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह के पास था। अतः कोयला घोटाला जांच के क्रम में प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह की भी जांच होना अनिवार्य है। इस प्रकार प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह की अवधि में प्रशासनिक भ्रष्टाचार एवं घपला–घोटाला इतने अधिक हुए है, जिसके कारण डॉ. मनमोहन सिंह को भारत में अबतक सबसे कमजोर प्रधानमंत्री कहा जाता है। जो कि बहुत ही शर्मनाक एवं निंदनीय विषय है।

भ्रष्टाचार निवारण के उपाय के संदर्भ में 'प्रशासनिक सुधार आयोग' का गठन, परिणाम उन्मुखी, जबावदेह और प्रशासनिक व्यवस्था उपलब्ध कराने के उद्देश्य से सरकार ने अगस्त, 2005 में कर्नाटक के पूर्व मुख्यमंत्री एम.वीरप्पा मोइली की अध्यक्षता में एक दुसरे 'कार्मिक एवं प्रशासनिक सुधार आयोग' के गठन की घोषणा की गयी। जिसमें अध्यक्ष सहित छरू सदस्य है। जो कुशल,

मितव्ययी, स्वच्छ, संवेदनशील एवं पारदर्शी लोकप्रशासन की दिशा में देश को आगे बढ़ाया जा सके।

प्रशासनिक सुधार आयोग ने सरकार को 15 रिपोर्ट प्रस्तुत की है, जिनके शीर्षक निम्न हैः–

1. सूचना का अधिकार–सुशासन की प्रमुख कुंजी।
2. मानव पूंजी को मुक्त करना।
3. आपदा प्रबंधन– निराशा से आशा की ओर।
4. शासन में नैतिकता।
5. लोक–व्यवस्था।
6. स्थानीय शासन।
7. विवादों के समाधान हेतु क्षमता निर्माण।
8. आतंकवाद का सामना करना।
9. सामाजिक संपदा–एक साझा निर्यात।
10. कार्मिक प्रशासन को पुनर्सज्जित करना–नई ऊंचाइयां चढ़ना।
11. ई–गवर्नेन्स को प्रोत्साहित करना–उन्नति की ओर बढ़ना।
12. नागरिक केंद्रित प्रशासन–शासन का केंद्र बिंदू।
13. भारत सरकार का संगठनात्मक ठांचा।
14. वित्तीय प्रबंधन प्रणाली को मजबुत बनाना।
15. राज्य और जिला प्रशासन।

भारत में प्रशासनिक सुधार की दिशा में प्रशासनिक सुधार और लोक शिकायत विभाग एक नोडल एजेंसी के रूप में कार्य कर रहा है। फिर भी भारत में प्रशासनिक सुधार के इतने सारे प्रयासों के बावजूद भी प्रशासन के बुनियादी ढाँचे और कार्य करने की प्रक्रियाओं में मूलभूत अंतर नहीं आ पाया है। स्वतंत्रता के 66 वर्ष पुरे होने के बाद भी भारत में प्रशासन बदलाव के लिए बेचौन दिखाई दे रहा है। पुरातन एवं अनावश्यक घिसी–पीटी प्रक्रियाओं को बदलना होगा, नौकरशाही की मनोवृत्तियों को बदल कर उसे उद्देश्यपरक बनाना होगा। इसलिए जब तक राजनीतिक एवं प्रशासनिक तंत्र का ईमानदारी पूर्वक सत्य निष्ठा के साथ बदलाव नहीं होगा, तब तक सामाजिक एवं आर्थिक विकास की बात करना बेईमानी होगी।

निष्कर्षः

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भारतीय राजनीति तथा प्रशासनिक व्यवस्था पूरी तरह भ्रष्टाचार के गिरफ्त में है। राजनीति और प्रशासन का अपना गहरा संबंध है, चूँकि राजनीति वाले कानून बनाते हैं और प्रशासन के माध्यम से उसे लागू किया जाता है। ऐसी स्थिति में अगर राजनीति में भ्रष्टाचार व्याप्त हो तो प्रशासन का उसमें संलिप्त होना स्वाभाविक है। अतएव राज और समाज की व्यवस्था को दुरूस्त करने के लिए दोनों में अंतर्निहित भ्रष्टाचार को मिटाना होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः

1. गोस्वामी, आचार्य भालचंद्र 'प्रखर', हमारी विधान सभाएं, विवेक पब्लिसिंग हाउस, जयपुर, 2005
2. गोस्वामी आचार्य भालचंद्र 'प्रखर', भारत में चुनाव सुधार दशा और दिशा, पोईन्टर्स पब्लिशर्स, जयपुर, 1999
3. इंडिया टुडे, ज्ञान भंडार, नई दिल्ली, मार्च, 2007
4. राजस्थान पत्रिका, जोधपुर 28 जुलाई, 2002
5. राजस्थान पत्रिका, जोधपुर 23 जुलाई, 2002
6. इंडिया टुडे, मार्च, 2007
7. वही